Impact Factor (SJIF): 6.092 E-ISSN: 2583-1615

International Journal of Research in Academic World

Received: 09/December/2024 IJRAW: 2025; 4(1):42-45 Accepted: 14/January/2025

समकालीन स्त्री कविता की सांस्कृतिक चेतना

*[1]ज्ञान प्रकाश यादव

*[1]पी.एच.डी., हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

सारांश

हिंदी स्त्री कविता का विषय बहुआयामी है। वह अपने निजी अस्तित्त्वबोध के साथ-साथ मानवताबोध पर भी प्रकाश डालती है। वह एक तरह ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक चेतना से युक्त है तो दूसरी तरफ सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना से भी। समकालीन स्त्री कविता में नारी-मुक्ति के सवाल के साथ-साथ बराबरी का या एक नागरिक समझें जाने का भाव भी विद्यमान है। इस आलेख में स्त्रियों के सांस्कृतिक संघर्ष को उनकी सांस्कृतिक चेतना के माध्यम से ही रेखांकित किया गया है।

मुख्य शब्द: लैंगिक अस्मिता, सांस्कृतिक समूह, सांस्कृतिक चेतना, संघर्ष, नारी-मुक्ति, भूमंडलीकरण, पूँजीवाद, पितृसत्ता एवं मनुस्मृति आदि।

प्रस्तावना

भारतीय समाज में स्त्रियाँ सदियों से उपेक्षित, शोषित एवं पीड़ित रही हैं। उन्हें शिक्षा से वंचित कर हाशिए पर रखा गया था। आज स्त्रियों को आधी आबादी के नाम से संबोधित किया जाता है। जैसे-जैसे स्त्रियाँ ज्ञान के क्षेत्रों से जुड़ती गईं ठीक वैसे ही वे अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति सजग भी होती रही हैं। उनकी इस सजगता को साहित्य में स्त्री अस्मिता के नाम से अभिहित किया जाता है। स्त्री अस्मिता के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए अजय वर्मा लिखते हैं कि, "जब स्त्रियों के लिए वर्जनाओं से मुक्ति की माँग उठती है तो यह भुला दिया जाता है कि वह एक लैंगिक अस्मिता के साथ-साथ एक सांस्कृतिक समूह से भी सम्बद्ध होती है और इस समूह की पहचान में उसकी पहचान लैंगिक अस्मिता के अलावा भी है। इसके साथ-साथ उसकी एक वर्गीय अस्मिता भी है। एक गरीब और दलित जाति की स्त्री एक साथ तीन अस्मिताओं के भार ढोती है, गरीबी के कारण उसके श्रम का शोषण होता है, दलित होने के कारण वह अस्पृश्यता का अपमान झेलती है और स्त्री होने के कारण उसकी यौनिकता का शोषण होता है। स्त्री प्रश्नों पर विचार करते समय इन तीनों को अलग-अलग स्वायत्त रूप में नहीं देखा जा सकता है।" [1]

आज का स्त्री लेखन बहुआयामी है। वह सृजन के सभी क्षेत्रों में सक्रिय है। स्त्री लेखन के संदर्भ में अर्चना वर्मा लिखती हैं कि, "जब तक स्त्री स्वयं को, अपने समाज को, अपनी निजी विशिष्टताओं के संदर्भों को अधिक गहराई में अभिव्यक्त नहीं करेगी तब तक वह पितृसत्ता की नकल में इस अंधी दौड़ और उससे पैदा होने वाले तमाम विकृतियों के विरोध में एक वास्तविक रिश्ता का विकास नहीं कर पायेगी।" [2] अर्चना वर्मा की यह चिंता स्त्री लेखन को सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करती है। समकालीन स्त्री कविता इन्हीं सब बिन्दुओं पर मुखर है।

अनामिका 'स्त्रियाँ' कविता में नारी के इतिहास बोध को पैनी दृष्टि से रेखांकित करती हैं। उनका कहना है कि जिस प्रकार लिफाफा बनाने से पहले रद्दी कागज के टुकड़ों को पढ़ा जाता है ठीक वैसे ही स्त्रियों को आधा-अधूरा ही पढ़ा गया है। पुरुषों ने स्त्रियों के दुःख-दर्द, पीड़ा को अपने दुःख, दर्द, पीड़ा की भांति नहीं महसूस किया है बल्कि इनके दुःख, दर्द, पीड़ा को बहुत दूर के रिश्तेदार के दुःख, दर्द, पीड़ा की भांति देखा है। कवयित्री के शब्दों में-

"पढ़ा गया हमको
जैसा पढ़ा जाता है काग़ज
बच्चों के फटी काँपियों का
चनाजोरगरम के लिफाफे बनाने से पहले।
देखा गया हमको
जैसे मुफ्त हो उम्मीदें
देखी जाती है कलाई घड़ी
अलस्सुबह अलार्म बजने के बाद
.....भोगा गया हमको।
बहुत दूर के रिश्तेदार के
दुःख की तरह।" [3]

नारी मुक्ति के विषय पर विश्वनाथ मिश्र लिखते हैं कि, "आज भूमंडलीकरण के नये साम्राज्यवादी दौर में, जब पूर्णरूपेण मानवद्रोही सिद्ध हो चुकी पूँजीवादी व्यवस्था के अस्तित्व पर ही प्रश्न-चिह्न उठ चुका है, तो भारतीय स्त्री समुदाय ने भी यौन-भेद पर आधारित असमानता-उत्पीड़न के उन सूक्ष्म रूपों-पद्धतियों की शिनाख़्त शुरू कर दी है, जो अब तक तमाम नैतिक-वैधिक-सांस्कृतिक रहस्यावरणों से ढँके रहते थे।" [4] कात्यायनी की कविता

*Corresponding Author: ज्ञान प्रकाश यादव

'रोजमर्रे की एक और बुनियादी ज़रूरत' मुक्ति की वकालत करती हैं। उनका कहना है कि जो भी व्यक्ति मुक्ति के पैरोकार हैं उन्हें जमीन पर संघर्ष करना होगा, सपने देखने मात्र से मुक्ति की मंशा पूरी नहीं होगी। सपने देखते रहने से केवल आयु बढ़ती है, इच्छाएं पूरी नहीं होती हैं। मुक्ति की इस कामना को अपरिहार्य जरूरत बनाना होगा ताकि हम उसे रोजमर्रे की ज़रूरतों में शामिल करके संघर्ष करते रहें-

"मुक्ति की चाहत को
सपनों की दुनिया से
बाहर लाना होगा।
मुक्ति की चाहत को
बस चाहत ही बने रहने देना
बूढ़ा कर देगा।
.....
और फिर उसके लिए
वैसा ही उद्यम करना होगा
जैसा कि हम ताउम्र करते हैं
अपनी रोजमर्रे की ज़रूरतें
पूरी करने के लिए
और
थकते नहीं हैं।" [5]

कात्यायनी स्त्री-मुक्ति के प्रश्न पर गहन विचार करती हैं। उनका कहना है कि, "स्त्री मुक्ति का सापेक्षिक अर्थों में भी पूँजीपति वर्ग तभी तक पैरोकार था जब तक कि वह क्रांति कर रहा था। सत्ता में स्थापित होने के बाद उसने उसे उतनी ही आजादी दी जितनी श्रम को सामंती बंधनों से मुक्त करके उपजती श्रम बना देने के लिए जरूरी था।" [6] रजनी अनुरागी की 'शुरूआत' कविता पुरुषों की मनुवादी मानसिकता पर सीधा प्रहार करती है-

"मैं समझ नहीं पाती
कहाँ तक फैली हैं
तुम्हारी विषाक्त जड़े
कहीं तो निश्चित ही होगा इनका अंत
ठीक वहीं से शुरूआत करूँगी मैं।" [7]

इस कविता में स्त्री अस्मिता की तलाश के साथ-साथ पुरुष वर्चस्व का प्रतिकार भी है। स्त्री कविता पर टिप्पणी करते हुए आलोचक परमानन्द श्रीवास्तव लिखते हैं कि, "स्त्री विमर्श की सैद्धान्तिकी के बाहर जाकर समकालीन कवयित्रियों ने इधर अनुभवों की जो दुनिया रची है, वह न पितृसत्तात्मक समाज के दमन से आक्रान्त है, न 'पर्सनल' को 'पोलिटिकल' बनाने की अनिवार्यता; बल्कि वह उनके सर्वथा निजी हालचाल के भीतर से उभरता हुआ वह आख्यान है, जो करूणा के नाम पर भावुकता-पीड़ित न होकर, आत्मविनोद और किसी दूसरी सत्ता के विरूद्ध तीखे व्यंग्य से सजीव है।" [8]
रजनी तिलक की कविताएं पुरुषवादी मानसिकता पर जमकर प्रहार करती हैं। रजनी तिलक कवयित्री होने के साथ-साथ सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं। यही वजह है कि वे अपनी कविता में गहरे अंतर्विरोधों को उकेरती हैं। इनकी कविताओं में दलित स्त्री की वेदना खुलकर सामने आती है। रजनी तिलक की 'औरत' नामक कविता पुरुषों की मर्दवादी सोच पर प्रकाश डालती है-

"औरत
एक जिस्म होती है
रात की नीरवता
बंद खामोश कमरे में
उपभोग की वस्तु होती है
खुले नीले आकाश तले
हर सुबह
वो रूह समेत दीखती है
पर डोर होती है
किसी आका के हाथों
जिस्म वो खुद ढोये फिरती है" [9]

इस कविता में जहाँ एक तरफ औरत के अस्तित्व की तलाश है वहीं दूसरी तरफ पुरुषों की मर्दवादी सोच पर प्रहार भी है। औरत एक जिस्म नहीं है, उसका अपना वजूद भी है। लेकिन औरत की आजादी पर नियंत्रण किसी पुरुष का होता है और रजनी तिलक की कविताएं इसी नियंत्रण पर प्रहार करती हैं। ब्रह्मा नन्द ने इस कविता को व्याख्यायित करते हुए लिखा है कि, "देह की गोलाइयों का मुआयना करती पुरुष की निगाहों में औरत सिर्फ एक शरीर है। अंधेरी रात पुरुष के लिए सुखद हो सकती है, स्त्री के लिए नहीं। पुरुष निर्जीव पुतले की भांति उसके शरीर को रौंदता है। स्त्री की चीखें चारदीवारी के भीतर ही दम तोड़ देती हैं। यदि किसी तरह वह बाहर आ भी जाएं तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था उसे अनसुना कर देती है। समाज बहरा हो जाता है। शारीरिक शोषण की शिकार स्त्री को संदेह की नज़र से देखा जाता है, उसे ही दोषी करार दिया जाता है।" [10] यही मर्दवादी समाज का सच है।
रजनी तिलक अपनी कविताओं में पुरुषवादी निगाहों पर नजर रखती हैं। उनकी 'योनि है क्या औरत' कविता इसी विषय पर केन्द्रित है। पुरुषवादी व्यवस्था औरत को किस नजर से देखती है, उसका यहाँ सजीव वर्णन किया गया है-

"हर स्त्री मर्द के लिए
एक योनि...
एक जोड़ी स्तन...
लरजते होंठ हैं!" [11]

रजनी तिलक सवर्ण कवयित्रियों से सवाल करती है कि वे अपनी सुविधा के अनुसार दलित स्त्री की अस्मत पर बाजारू नियंत्रण क्यों चाहती हैं? क्या दलित स्त्रियाँ अपनी आज़ादी की लड़ाई नहीं लड़ सकती हैं? रजनी तिलक का यह तल्ख़ तेवर ही उनकी कविताई की ख़ासियत है-

"एक योनि सवर्ण बहिना की
उन्हें अपनी योनि पर
खुद का नियंत्रण चाहिए
तब दलित स्त्री की आबरू पर
बाजारू नियंत्रण क्यों?" [12]

सुशीला टाकभौरे एक ऐसी दलित कवयित्री हैं जो छद्म विकास के नाम पर बनाए जा रहे भ्रामक प्रतिमानों को तोड़ती हैं। वे गाँव-घर में प्रचलित सामाजिक-सांस्कृतिक कुरीतियों का विखंडन करती हैं। कुत्ता और कुतिया दोनों जानवर हैं। एक पुल्लिंग है तो दूसरा स्त्रीलिंग। पुरुषवादी समाज लिंग के आधार पर भेदभाव करता है। यही वजह है कि इस समाज में एक को वफादार बताया जाता है तो दूसरे को गाली का पर्याय माना जाता है। सुशीला टाकभौरे की 'गाली' शीर्षक कविता इस स्थिति पर प्रकाश डालती है-

"वफा के नाम पर
अपने आप को
एक कुत्ता
कहा जा सकता है
मगर कुतिया नहीं
....."

जब कुत्ता और कुतिया
एक दूसरे के पूरक हैं
तब कुत्ते को वफादार
कहने के साथ ही
चरित्र के नाम पर
'कुतिया' गाली क्यों दी जाती है" [13]

पुरुषवादी व्यवस्था स्त्री के अस्तित्व को स्वाधीन नहीं रहने देती है। जबकि स्त्री की प्रकृति ठीक इसके उलट है। ज़ाहिर है कि स्त्री का आंदोलन पुरुष के आंदोलन से ज्यादा न्यायसंगत होता है। जगदीश्वर चतुर्वेदी ने ठीक ही लिखा है कि, "स्त्री जब अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष कर रही होती है तो समग्रता के लिए लड़ रही होती है और जब पुरुष अस्मिता के लिए संघर्ष करता है तो अधूरे यथार्थ की प्राप्ति के लिए संघर्ष करता हैं, स्त्री की लड़ाई समूचे समाज की लड़ाई है जबकि पुरुष की लड़ाई सिर्फ पुरुष की लड़ाई है, उसका पूरे समाज के संघर्ष से कोई संबंध नहीं होता है।" [14]
नीलम की कविताओं में पुरुषवादी व्यवस्था द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों के ख़िलाफ शेरनी की दहाड़ मौजूद है। वे गर्जना करती हैं कि पुरुषों द्वारा लगाए गए सभी प्रतिबंधों को वे शेरनी की भाँति चीर-फाड़ देंगी। आज की नारी पुरुषवादी व्यवस्था द्वारा थोपे गए किसी भी प्रतिबंध को झेलने के लिए विवश नहीं है। भारत का संविधान वर्चस्ववादी सामाजिक व्यवस्था से आज़ादी प्रदान करता है। नीलम की 'प्रतिबंध' कविता में एक ललकार है जो युवतियों एवं महिलाओं को अपने अस्तित्व के प्रति सजग रहना सिखाती है। किसी भी समाज में प्रतिबंध का स्वरूप मानवीय नहीं होता है। इसलिए इसके ख़िलाफ लड़ाई जारी रहती है-

"प्रतिबंध! प्रतिबंध! प्रतिबंध!
जितना लगाओगे प्रतिबंध
बनके दबंग चढ़ जाएंगे
दहाड़ेंगे सिंहनी के समान
बादल बनकर गरजेंगे
बिजली बनकर टूटेंगे
कर जाएंगे
तुम्हें लहूलुहान" [15]

भारत की सामाजिक व्यवस्था मनुस्मृति से प्रभावित रही है। समाज इसी विधान से संचालित होता रहा है। इस विधान में मनु की जाति की श्रेष्ठता और अन्याय, अत्याचार एवं अमानवीयता के सभी सूत्र मौजूद हैं। इसी कारण नीलम 'ओ मनुओं के वंशज' कविता में मनुवादियों को ललकारती हैं-

"ओ!
मनुओं के वंशज
तुम जितना काटोगे
हम उतना बढ़ते जाएंगे
तुम जितना तोड़ोगे
हम उतना जुड़ते जाएंगे
तुम जितना उजाड़ोगे
हम उतना बसते जाएंगे
तुम जितना रोकोगे
हम उतना कदम बढ़ाएंगे
अब रोक न सकोगे हमें
हम घास की तरह
फैलते जाएंगे।" [16]

इस ललकार में जहाँ एक ओर संघर्ष की लालसा है वहीं दूसरी ओर एकजुटता की स्वाभाविक तलाश भी है। नीलम की कविताओं में मनुवादी व्यवस्था के प्रति तीव्र विरोध मौजूद है। नीलम एक ऐसी कवयित्री हैं जो खुद को परिभाषित करते हुए सामाजिक व्यवस्था की जटिलता पर प्रहार करती हैं। डॉ. रजत रानी मीनू स्त्री अस्मिता पर प्रकाश डालते हुए लिखती हैं कि, "स्त्री विमर्श के भीतर स्त्री न केवल स्वयं को परिभाषित करती है बल्कि स्वयं के साथ-साथ मौजूद सामाजिक संस्थाओं और उनकी सारगर्भिता तथा पुरुष को भी परिभाषित करती है। वास्तव में स्त्री विमर्श का उद्देश्य पुरुष का विरोध नहीं है बल्कि उस पितृसत्तावादी मानसिकता का विरोध है जो अपनी सामंती वृत्तियों के चलते स्त्री को मानवीय गरिमा न देकर उसे अपनी संपत्ति समझता है। इस प्रकार वह अपने ऊपर लगाए तमाम पितृवादी दलील को खारिज करती है न कि वह समाज को तोड़ने का कार्य करती है।" [17]
कांता बौद्ध की कविताओं में गरीबी, भुखमरी एवं बेकारी का सजीव चित्रण मिलता है। उनकी 'मेरा भारत महान' कविता भूख से लाचार व्यक्ति की जीवन गाथा है। पेट की भूख आदमी को लाचार कर देती है। उसे पेट की आग को शांत करने के लिए बंदूक उठाना पड़ जाता है। उन्हें नक्सली कहा जाता है। कवयित्री के शब्दों में-

"उसी पेट की आग ने
मुझे
गोली का
निशाना बना दिया।
मेरे भारत महान!
मेरा देश ने
मुझे
नक्सलाइट बना दिया।" [18]

स्त्री कविता की भाषा में आक्रोश के साथ-साथ संयम भी मौजूद है। स्त्री कविता की भाषा का मूल्यांकन करते हुए सुधा सिंह लिखती हैं कि, "स्त्रियों की भाषा में जिन वैचारिक संघर्षों की अभिव्यक्ति हुई है वे यह साबित करते हैं कि स्त्री सरोकार के मुद्दे मात्र वैयक्तिकता और स्त्री पुरुष संबंधों की अभिव्यक्ति का पर्याय मात्र नहीं है। स्त्री लेखन के विषय-वस्तु के कुछ निश्चित परिवर्तनों को दर्शाते हैं। अपने वैयक्तिक संबंधों/अनुभवों को भाषा के माध्यम से उभारने के साथ ही वे सामाजिक मुद्दों और संघर्षों की तरफ मुड़ी हैं। स्त्री को भी लेखिकाओं ने साहित्य में एक नए नजरिए से देखा है। अब तक स्त्रियाँ आधी ब्रह्मा की और पुरुष लेखकों की कल्पना की सृष्टि थी। वृहत्तर सामाजिक परिप्रेक्ष्य को सामने रखकर जब स्त्री रचना करती है तो वर्चस्वशील भाषा के मुहावरों के विखण्डन का विमर्श शुरु होता है।" [19]

निष्कर्ष

हिंदी की स्त्री कविता में सांस्कृतिक वर्चस्व एवं पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति तल्ख़ तेवर दिखाई देता है। कवयित्रियों ने जहाँ एक तरफ पुरुषवादी सोच एवं सत्ता पर प्रहार किया है वहीं दूसरी तरफ प्रेम एवं समन्वय की वकालत भी की है। अधिकांश कवयित्रियाँ सामाजिक आंदोलनों से जुड़ी रही हैं, इसीलिए उनकी कविताओं में आंदोलन की तल्ख़ भाषा, भाईचारा, प्रेम एवं सहयोग के स्वर भी मौजूद हैं। समकालीन स्त्री कविता ने मनुवादी व्यवस्था के प्रति अपनी घोर असहमति दर्ज कराई है। इसमें संवैधानिक एवं लोकतांत्रिक मूल्य भी मौजूद हैं। स्त्री कविता ने जहाँ एक तरफ स्त्री अस्मिता की तलाश की है वहीं दूसरी तरफ स्त्री सशक्तिकरण को नई दिशा भी प्रदान की है। यही समकालीन स्त्री कविता की सांस्कृतिक चेतना भी है।

सन्दर्भ

1. सत्ता, संस्कृति और साम्राज्यवाद: अजय वर्मा, शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2012, पृष्ठ 67
2. औरत उत्तरकथा: संपादक द्वय–राजेन्द्र यादव, अर्चना वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण–2002, पृष्ठ 143
3. खुरदुरी हथेलियाँ: अनामिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004, पृष्ठ 13
4. दुर्ग द्वार पर दस्तक: कात्यायनी, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, संस्करण–1997, पुस्तक के फ्लैप से
5. जादू नहीं कविता: कात्यायनी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2002, पृष्ठ 165
6. दुर्ग द्वार पर दस्तक: कात्यायनी, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, संस्करण–1997, पृष्ठ 38
7. बिना किसी भूमिका के: रजनी अनुरागी, आरोही प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2011, पृष्ठ 78
8. कविता का उत्तर जीवन: परमानन्द श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2004, पृष्ठ 187
9. हवा सी बेचैन युवतियाँ (दलित स्त्रीवाद की कविताएँ): रजनी तिलक, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2014, पृष्ठ 65
10. दलित कविता का मूल्यांकन: ब्रह्मा नन्द, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2019, पृष्ठ 96
11. हवा सी बेचैन युवतियाँ (दलित स्त्रीवाद की कविताएँ): रजनी तिलक, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2014, पृष्ठ 81
12. वही, पृष्ठ 83
13. http://kavitakosh.org/गाली/सुशीला टाकभौरे
14. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श: जगदीश्वर चतुर्वेदी, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2012, पृष्ठ 2
15. सबसे बुरी लड़की: नीलम, रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, पहला संस्करण–2020, पृष्ठ 11
16. वही, पृष्ठ 14
17. अस्मितामूलक विमर्श और हिंदी साहित्य: रजत रानी मीनू, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2022, पृष्ठ 20
18. कलम से क़त्ल: कांता बौद्ध, कदम प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2016, पृष्ठ 57
19. स्त्री अस्मिता: साहित्य और विचारधारा: संपादक–जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह, आनंद प्रकाशन, कोलकाता, संस्करण–2004, पृष्ठ 234।